

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में
2010 का सिविल रिट क्षेत्राधिकार मामला सं.11961

=====

पुलक चंद्र दास, पुत्र- स्वर्गीय कांति चंद्र दास, निवासी - मोहल्ला-हाई स्कूल पारा, ईस्ट बंग
 भवन के पास, थाना - कटिहार, जिला - कटिहार

..... याचिकाकर्ता।

बनाम

1. भारतीय स्टेट बैंक अपने मुख्य महाप्रबंधक के माध्यम से, 7 वीं मंजिल, स्थानीय मुख्य कार्यालय, भारतीय स्टेट बैंक, पश्चिम गांधी मैदान, पटना ।
2. उप महाप्रबंधक ओ और सी (एन. डब्ल्यू.-।)-सह-अपीलीय प्राधिकारी अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रकोष्ठ, भारतीय स्टेट बैंक, प्रशासनिक भवन, जे. सी. रोड, पटना।
3. सहायक महाप्रबंधक (प्रशासन)-सह-अनुशासनात्मक प्राधिकारी अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रकोष्ठ, भारतीय स्टेट बैंक, प्रशासनिक कार्यालय, पूर्णिया।
4. सहायक महाप्रबंधक क्षेत्र III, भारतीय स्टेट बैंक क्षेत्रीय कार्यालय, पूर्णिया।
5. उप प्रबंधक-सह-पूछताछ अधिकारी, भारतीय स्टेट बैंक प्रशासनिक कार्यालय, पूर्णिया क्षेत्र III, पूर्णिया।
6. उप प्रबंधक-सह-प्रस्तुत अधिकारी, भारतीय स्टेट बैंक क्षेत्र III, प्रशासनिक कार्यालय, पूर्णिया।
7. शाखा प्रबंधक, भारतीय स्टेट बैंक, फारबिसगंज, शाखा, जिला-अररिया

.....उत्तरदातागण।

=====

उपस्थिति :

याचिकाकर्ता के लिए	:	श्री आदित्य नारायण सिंह, अधिवक्ता
		श्री कुंदन कुमार सिन्हा, अधिवक्ता
उत्तरदाता- एस. बी. आई. के लिए	:	श्री अशोक चौधरी, वरिष्ठ अधिवक्ता
		श्री अंजनी कुमार मिश्रा, अधिवक्ता
	:	श्री अक्षांश अंकित अधिवक्ता।

=====

रिट याचिका - यह याचिका उस आदेश को रद्द करने के लिए दायर की गई है, जिसके तहत अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता पर "बैंक की सेवा से निष्कासन के साथ-साथ

सेवानिवृत्ति लाभ... तथा निलंबन की अवधि को उसी रूप में माना जाएगा, अर्थात् इयूटी पर नहीं" की सजा लगाई है।

न्यायालय का निर्णय: प्रतिवादियों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि आरोप-पत्र के साथ याचिकाकर्ता को दस्तावेजों की सूची और गवाहों की सूची प्रदान नहीं की गई थी। इसके अलावा, उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि जाँच अधिकारी द्वारा जिन दस्तावेजों पर भरोसा किया गया, उनके समर्थन में किसी भी गवाह की जाँच नहीं की गई। आरोप सिद्ध करने के लिए जिन दस्तावेजों को विचार में लिया गया, उनके लेखकों की न तो जाँच हुई और न ही जिरह। इन आधारों पर, याचिकाकर्ता विवादित निर्णयों में हस्तक्षेप का लाभ पाने का अधिकारी है। (पैरा 6)

वर्तमान रिट याचिका में की गई दलीलें आरोपों को स्वीकार करने के समान नहीं हैं। याचिकाकर्ता ने केवल यह व्यक्त किया है कि उस समय उसे किन समस्याओं का सामना करना पड़ा। दूसरी ओर, आरोप गंभीर प्रकृति के हैं, क्योंकि यह अस्थायी रूप से धन के गबन से संबंधित हैं, और इसे विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार सिद्ध किया जाना आवश्यक है। (पैरा 8)

रिट याचिका स्वीकृत की जाती है। (पैरा 14)

पटना उच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

पीठ: माननीय न्यायमूर्ति श्री पी. बी. भजंत्री

मौखिक न्यायादेश

तिथि - 14-02-2025

तत्काल रिट याचिका में, याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित राहत (ओं) के लिए अनुरोध किया है:

“सहायक महाप्रबंधक (प्रशासन)-सह-अनुशासनात्मक प्राधिकरण, अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रकोष्ठ, भारतीय स्टेट बैंक, प्रशासनिक कार्यालय, पूर्णिया द्वारा पारित दिनांक 14.11.2009 के आदेश को निरस्त करने के लिए उत्प्रेषण प्रकृति में रिट जारी करने के लिए, जिसके तहत अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता पर “ बैंक की सेवा से हटाने के साथ सेवानिवृत्ति लाभ यानी पेंशन और/या भविष्य निधि और ग्रेच्युटी जो कि प्रासंगिक समय पर लागू नियमों और विनियमों के तहत अन्यथा देय होगा और समझौता ज्ञापन दिनांक 10.04.2002 के खंड 6(बी) के तहत भविष्य की नौकरी से अयोग्य घोषित किए बिना, दंड लगाया है। निलंबन की अवधि को ऐसे माना जाएगा की यानी “इयूटी पर नहीं” थे ।

साथ ही भारतीय स्टेट बैंक प्रशासनिक भवन जे.सी. रोड, पटना के उप महाप्रबंधक ओ एंड सी (एन. डब्ल्यू.-I) (अपीलीय प्राधिकारी) द्वारा 19 फरवरी 2010 को पारित आदेश को रद्द करने के लिए, जिसमें अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता को बैंक सेवाओं से हटाने के दंड की पुष्टि की गई थी।

दोनों आदेश, एक अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा 14.11.2009 को और दूसरा अपीलीय प्राधिकारी द्वारा 19 फरवरी 2010, संबंधित तिथियों के सकारण आदेश द्वारा समर्थित था।

2. याचिकाकर्ता जब उत्तरदाता-बैंक में वरिष्ठ सहायक के रूप में कार्यरत था, तो उसे अनुशासनात्मक कार्यवाही का सामना करना पड़ा। कथित प्रारंभिक आरोप 13.03.2007 को तय किए गए। याचिकाकर्ता ने अपना जवाब 17.04.2007 को समर्पित किया। इसके बाद, कथित रूप से अंतिम आरोप 22.08.2007 पर तय किए गए हैं। याचिकाकर्ता ने अपना जवाब 05.09.2007 को समर्पित किया था। याचिकाकर्ता के स्पष्टीकरण से संतुष्ट नहीं होने पर अनुशासनात्मक प्राधिकरण जांच अधिकारी नियुक्त करने के लिए आगे बढ़ा। जाँच अधिकारी ने 26.12.2008 पर अपनी रिपोर्ट समर्पित की, जिसमें कहा गया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप साबित हो गए थे। परिणामस्वरूप, अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा दिनांकित 05.11.2009 का दूसरा कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। इसके बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकरण 14.11.2009 को सेवा से हटाने का दंड लगाने के लिए आगे बढ़ा। सजा के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने 26.12.2009 को अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष अपील की जिसमें याचिकाकर्ता को 19.02.2010 के आदेश का सामना करना पड़ा। इसलिए, वर्तमान रिट याचिका दायर की गई।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने निवेदन किया कि याचिकाकर्ता कामगार कर्मचारियों और प्रक्रिया के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाई के संबंध में दिनांक 10.04.2002 के द्विपक्षीय समझौते द्वारा शासित है। यह समर्पित किया जाता है कि आरोप-पत्र के साथ, दस्तावेजों की सूची और गवाहों की सूची और अभियोग कथन उपलब्ध नहीं कराया गया। पहली बार, जांच अधिकारी ने दस्तावेजों की कुछ सूची पर ध्यान दिया। किसी भी गवाह की जांच नहीं की गई है, जैसे दस्तावेजों के लेखक की, जिन पर आरोप साबित

करने के उद्देश्य से ध्यान दिया गया था। अनुशासनात्मक और अपीलीय प्राधिकरण द्वारा इसकी सलाहना नहीं की गई है। सेवा से हटाने की सजा एक बड़ी सजा है। दिनांकित 10.04.2002 द्विपक्षीय समझौते का पालन न करना याचिकाकर्ता के अधिकार का उल्लंघन करता है और इसलिए यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का भी उल्लंघन है। कथित आरोपों के समर्थन में गवाहों से पूछताछ न करना अपील प्राधिकरण द्वारा हटाने के विवादित आदेशों को रद्द करने के लिए पर्याप्त है और उनके पुष्टि के लिए **रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक और अन्य (2009) 2 सुप्रीम कोर्ट केस 570** में रिपोर्ट की गई, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में, और साथ में **भारत संघ और अन्य बनाम पी. गुनासेकरन, (2015) 2 एससीसी 610**, और **कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमेश, (2022) 6 सुप्रीम कोर्ट केस 563** में रिपोर्ट की गई, में निर्धारित सिद्धांतों के साथ पढ़ने में इसकी पुष्टि होती है जहाँ तक किसी अनुशासनात्मक कार्यवाही में न्यायिक समीक्षा की बात है।

4. इसके विपरीत, प्रत्यर्थियों के विद्वान वकील ने जोरदार तर्क दिया कि याचिकाकर्ता को हर अवसर प्रदान किया गया है। भले ही 10.04.2002 के द्विपक्षीय समझौते के तहत प्रारंभिक आरोप जारी करने और जवाब मांगने का कोई प्रावधान नहीं है। इसके बाद, एक और आरोप पत्र जारी किया और जवाब प्राप्त किया। इस तरह की कार्यवाही को अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा केवल याचिकाकर्ता को सुनवाई का पर्याप्त अवसर प्रदान करने के लिए अपनाया गया है। यह भी समर्पित किया जाता है कि याचिकाकर्ता ने कथित आरोपों को स्वीकार कर लिया है, जिसे उत्तरवादियों द्वारा रिट याचिका के पैराग्राफ-23 के रूप में इंगित किया गया है और साथ ही याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व भी। यह आगे निवेदन किया जाता है कि वर्तमान मामला इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय द्वारा पूरी तरह से कवर किया गया है, जहाँ तक **एल.पी.ए. संख्या 297/2019 (संतोष कुमार पासवान बनाम भारतीय स्टेट बैंक और अन्य)** दिनांकित 20.02.2024 में आरोपों की स्वीकृति का संबंध है।

5. संबंधित पक्षों के विद्वान वकील को सुना।

6. तारीखों और घटनाओं पर किसी भी पक्ष द्वारा कोई विवाद नहीं है। प्रत्यर्थियों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि आरोप-ज्ञापन के साथ याचिकाकर्ता को दस्तावेजों की सूची और गवाहों की सूची प्रदान नहीं की गई है और उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि उन दस्तावेजों के समर्थन में किसी भी गवाह से पूछताछ नहीं की गई है जिन पर पूछताछ अधिकारी ने भरोसा किया था। दूसरे शब्दों में, दस्तावेजों के लेखक, जिनके पास आरोप साबित करने के उद्देश्य से विचार में लिया गया है, जांच नहीं की गई है या प्रतिपरीक्षा नहीं की गई है। इन आधारों पर, याचिकाकर्ता **कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमेश (2022) 6 सुप्रीम कोर्ट केस 563** में रिपोर्ट किया गया, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के आलोक में अनुशासनात्मक और अपीलीय प्राधिकरण के विवादित निर्णयों में हस्तक्षेप का लाभ पाने का हकदार है। उपरोक्त निर्णय का अनुच्छेद-22 इस प्रकार है:

“22. न्यायिक समीक्षा के अभ्यास में, न्यायालय अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्षों पर एक अपीलीय मंच के रूप में कार्य नहीं करता है। अदालत उन सबूतों की फिर से साराहना नहीं करती है जिनके आधार पर अनुशासनात्मक जांच के दौरान कदाचार का निष्कर्ष निकाला गया है। न्यायिक समीक्षा के अभ्यास में न्यायालय को यह निर्धारित करने के लिए अपनी समीक्षा को प्रतिबंधित करना चाहिए कि क्या:

- (i) प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन किया गया है।
- (ii) दुराचार का निष्कर्ष कुछ साक्ष्यों पर आधारित है।
- (iii) अनुशासनात्मक जांच के संचालन को नियंत्रित करने वाले वैधानिक नियमों का पालन किया गया है; और
- (iv) क्या अनुशासनात्मक प्राधिकार के निष्कर्ष विकृति से ग्रस्त है; और

(v) दंड सिद्ध कदाचार के अनुपात में नहीं है। [कर्नाटक राज्य बनाम एन. गंगराज, (2020) 3 एससीसी 423:(2020) 1 एस. सी. सी. (एल एंड एस) 547; भारत संघ बनाम जी. गनयुथम, (1997) 7 एस. सी. सी. 463:1997 एससीसी (एल एंड एस) 1806; बी. सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ, (1995) 6 एससीसी 749:1996 एससीसी (एल एंड एस) 80; आर. एस. सैनी बनाम पंजाब राज्य, (1999) एससीसी 90:1999 एस. सी. सी. (एल एंड एस) 1424 और सी. आई. एस. एफ. बनाम अबरार अली, (2017) 4 एस. सी. सी. 507:(2018) 1 एस. सी. सी. (एल एंड एस) 310]।

7. उत्तरवादियों के विद्वान वकील ने रिट याचिका के पैराग्राफ-23 में याचिकाकर्ता की स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया और यह इस प्रकार था:

“23. इसके अलावा वर्ष 2006 के आरोप पत्र में लगाए गए सभी आरोप जिसमें याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु हुई थी, उनके ससुर की गंभीर बीमारी के बाद मृत्यु हो गई और उनकी पत्नी को दिल का दौरा पड़ा और उनका काफी लंबे समय तक पटना में इलाज किया गया और इसलिए उनके दिमाग में कुछ असंतुलन था जो बैंक में काम करने के निर्धारित मानदंडों से थोड़ा विचलन का कारण हो सकता है। यहाँ तक कि जाँच अधिकारी ने भी अपनी जाँच रिपोर्ट में पाया है कि बैंक को कोई नुकसान नहीं हुआ है।”

8. रिट याचिका में उपरोक्त दलीलें आरोपों को स्वीकार करने के बराबर नहीं हैं। उन्होंने केवल वही व्यक्त किया है जो प्रासंगिक समय पर उनके सामने आने वाले मुद्दे थे। दूसरी ओर, आरोप गंभीर प्रकृति के हैं, क्योंकि उन पर अस्थायी रूप से धन का दुरुपयोग करने का आरोप है, तथा इसे कानून के ज्ञात तरीके से साबित करना आवश्यक है। संतोष कुमार पासवान बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया और अन्य के मामले में उद्धृत निर्णय, तथ्यात्मक पहलुओं पर, अलग है और प्रतिवादी-बैंक की सहायता नहीं करेगा।

9. रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक एवं अन्य के मामले में, (2009)2 एससीसी 570 में रिपोर्ट किया गया, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ-14 और 23 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

“14. निर्विवाद रूप से, विभागीय कार्यवाही एक अर्ध-न्यायिक कार्यवाही है। जांच अधिकारी एक अर्ध न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी के खिलाफ लगाए गए आरोप साबित होने चाहिए। जांच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर लाई गई सामग्री को ध्यान में रखते हुए किसी निष्कर्ष पर पहुंचे। जांच अधिकारी द्वारा सभी आरोपियों के खिलाफ जांच के दौरान एकत्र किए गए कथित साक्ष्य को अनुशासनात्मक कार्यवाही में साक्ष्य नहीं माना जा सकता। उक्त दस्तावेजों को साबित करने के लिए किसी गवाह से पूछताछ नहीं की गई। प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेजों को प्रस्तुत किया और इसकी सामग्री को साबित नहीं किया। अन्य बातों के साथ-साथ अब तक, जांच अधिकारी द्वारा प्राथमिकी को आधार बनाया गया जिसे सबूत के रूप में नहीं माना जा सकता था।

रेखांकित आपूर्ति की गई।

23. इसके अलावा, अनुशासनिक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी के आदेश का कोई भी कारण समर्थित नहीं है। चूंकि उनके द्वारा पारित आदेशों के गंभीर नागरिक परिणाम हैं, इसलिए उचित कारण बताए जाने चाहिए थे। यदि जांच

अधिकारी ने अपीलार्थी द्वारा की गई स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया था, तो इसका कोई कारण नहीं था कि आपराधिक अदालत द्वारा स्वयं के साक्ष्य के आधार पर पारित आरोपमुक्त करने के आदेश पर विचार क्यों नहीं किया जाना चाहिए था। अपराध की ओर इशारा करते हुए अभिलेख पर लाई गई सामग्री को साबित करने की आवश्यकता है। निर्णय कुछ सबूतों पर लिया जाना चाहिए, जो कानूनी रूप से स्वीकार्य हैं। साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान विभागीय कार्यवाही में लागू नहीं हो सकते हैं, लेकिन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत लागू होते हैं। चूंकि जांच अधिकारी की रिपोर्ट केवल स्वयं के कथन और अनुमानों और अटकलों पर आधारित थी, इसलिए इसे कायम नहीं रखा जा सकता था। जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष स्पष्ट रूप से किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं थे। सन्देह, जैसा कि सर्वविदित है, चाहे वह कितना भी अधिक क्यों न हो, किसी भी परिस्थिति में कानूनी प्रमाण का विकल्प नहीं माना जा सकता है।

रेखांकित आपूर्ति की गई।

10. भारत संघ एवं अन्य बनाम ज्ञान चंद चतर के मामले में, (2009) 12 एससीसी 78 में रिपोर्ट की गई, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ-20, 22 और 30 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

“20. जहां तक आरोप 6 अर्थात वेतन भत्तों का भुगतान करने के लिए 1 प्रतिशत कमीशन मांगने का संबंध है, विद्वान

एकल न्यायाधीश ने इस संबंध में जांच किए गए सभी गवाहों के साक्ष्य की सराहना की है और इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि एक भी व्यक्ति ने जांच अधिकारी के समक्ष यह बयान नहीं दिया था कि प्रतिवादी कर्मचारी ने किसी भी व्यक्ति को अपने भत्तों का भुगतान करने के लिए 1 प्रतिशत कमीशन देने के लिए कहा था। यह सुनी सुनाई बातों पर आधारित था। सभी गवाहों ने कहा कि यह भुगतान नहीं करने का उद्देश्य/कारण हो सकता है।

22. जाँच अधिकारी के सामने गवाहों से पूछताछ की गई कि उन्होंने सुना है कि उक्त प्रतिवादी पूछ रहा था लेकिन उनमें से कोई भी यह इंगित करने के लिए सक्षम नहीं था कि वह व्यक्ति कौन था जिसे 1 प्रतिशत कमीशन देने के लिए कहा गया था। ऐसे गवाहों में से एक ने गवाही दी कि किसी अज्ञात व्यक्ति ने उसे बताया था। विद्वान एकल न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस संबंध में गवाहों की जानकारी "कुछ अज्ञात व्यक्तियों के सुनी-सुनाई बातों पर आधारित थी जिन्हें वे नहीं जानते थे।" यह निश्चित रूप से एक कर्मचारी के खिलाफ भ्रष्टाचार के इतने गंभीर आरोप को बनाए रखने के लिए कानूनी सबूत नहीं था।

30. आरोप 6 मूल रूप से सुनी-सुनाई बातों पर आधारित था और यह अनुमान लगाना मुश्किल है कि क्या इस तरह के अस्पष्ट आरोप पर जांच की जा सकती है। आरोप 6 में

यह नहीं बताया गया है कि वह व्यक्ति कौन था जिसे प्रतिवादी द्वारा वेतन भत्तों के भुगतान के लिए 1 प्रतिशत कमीशन का भुगतान करने के लिए कहा गया था। यह एक स्वीकृत स्थिति है कि यदि भ्रष्टाचार का आरोप साबित हो जाता है, तो बर्खास्तगी के अलावा कोई सजा नहीं दी जा सकती है।

11. भारत संघ एवं अन्य बनाम पी. गुनासेकरन के मामले में, (2015) 2 एससीसी 610 में रिपोर्ट किया गया, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ-12, 13, 14, 15 और 16 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

“12. अच्छी तरह से स्थिर स्थिति के बावजूद, यह दुखद रूप से परेशान करने वाला है कि उच्च न्यायालय ने अनुशासनात्मक कार्यवाही में एक अपीलीय प्राधिकरण के रूप में काम किया है, यहां तक कि जाँच अधिकारी के समक्ष साक्ष्य की भी सराहना की है। आरोप । पर निष्कर्ष को अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा स्वीकार कर लिया गया था और केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा भी इसका समर्थन किया गया था। अनुशासनात्मक कार्यवाहियों में, उच्च न्यायालय प्रथम अपील के दूसरे न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है और न ही कर सकता है। उच्च न्यायालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने का साहस नहीं करेगा। उच्च न्यायालय केवल यह देख सकता है कि क्या:

(क) जांच किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा की गई है;

(ख) जाँच उस संबंध में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की गई है;

(ग) कार्यवाही के संचालन में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है;

(घ) अधिकारियों ने मामले के साक्ष्य और गुण-दोष से इतर कुछ विचारों के कारण निष्पक्ष निष्कर्ष पर पहुंचने में खुद को अक्षम कर लिया है;

(ई) अधिकारियों ने खुद को अप्रासंगिक या बाहरी विचारों से प्रभावित होने दिया है;

(च) निष्कर्ष, पहली नजर में, इतना मनमाना और मनमौजी है कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति ऐसे निष्कर्ष पर कभी नहीं पहुंच सकता;

(छ) अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वीकार्य और महत्वपूर्ण साक्ष्य को स्वीकार करने में गलती से विफल रहा;

(ज) अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने गलती से अस्वीकार्य साक्ष्य को स्वीकार किया था जिसने निष्कर्ष को प्रभावित किया है;

(झ) तथ्य का निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है।

रेखांकित आपूर्ति की गई।

13. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत, उच्च न्यायालय निम्नलिखित कार्य नहीं करेगा:

(i) साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करना।

(ii) जाँच के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करना, यदि वे कानून के अनुसार किए गए हैं;

- (iii) साक्ष्यों की पर्याप्तता पर जाना;
- (iv) साक्ष्यों की विश्वसनीयता पर जाना;
- (v) हस्तक्षेप करना, यदि कुछ कानूनी साक्ष्य हों जिन पर निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं;
- (vi) तथ्य की गलती को सुधारना, चाहे वह कितनी भी गंभीर हो;
- (vii) सजा के अनुपातिकता में जाना, जब तक कि यह उसकी आत्मा को झकझोर न दे।

14. ए.पी. राज्य बनाम एस. श्री राम राव [ए.आई.आर. 1963 एससी 1723] के शुरुआती निर्णयों में से एक में, उपरोक्त कई सिद्धांतों पर चर्चा की गई है और यह इस प्रकार निष्कर्ष निकाला गया है: (ए.आई.आर. पृष्ठ 1726-27, पैरा 7)

..7. ... उच्च न्यायालय का गठन संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक लोक सेवक के खिलाफ विभागीय जांच करने वाले अधिकारियों के फैसले पर अपील की अदालत के रूप में नहीं किया गया है: यह यह निर्धारित करने के लिए संबंधित है कि क्या जांच उस ओर से सक्षम प्राधिकारी द्वारा की गई है और उस संबंध में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की गई है और क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन नहीं किया गया है। जहां कुछ साक्ष्य हैं, जिन्हें जांच करने का दायित्व सौंपे गए प्राधिकारी ने स्वीकार कर लिया है और जो साक्ष्य इस निष्कर्ष का यथोचित समर्थन करते हैं कि दोषी अधिकारी आरोप का दोषी है, वहां अनुच्छेद 226 के तहत रिट के लिए याचिका में साक्ष्य की समीक्षा करना और साक्ष्य के आधार पर स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचना उच्च न्यायालय का कार्य नहीं है। उच्च न्यायालय निस्संदेह हस्तक्षेप कर सकता है जहां विभागीय अधिकारियों ने प्राकृतिक न्याय

के नियमों के साथ असंगत तरीके से या जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों का उल्लंघन करते हुए अपराधी के खिलाफ कार्यवाही की है या जहां अधिकारियों ने साक्ष्य और मामले के गुण-दोष से परे कुछ विचारों द्वारा या खुद को अप्रासंगिक विचारों से प्रभावित होने की अनुमति देकर निष्पक्ष निर्णय तक पहुंचने में खुद को अक्षम कर लिया है जहां निष्कर्ष पूरी तरह से मनमाना और कपटी है कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी उस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता था, या इसी तरह के आधार पर। लेकिन विभागीय अधिकारी, यदि जांच अन्यथा ठीक से आयोजित की जाती है, तो तथ्यों के एकमात्र न्यायाधीश होते हैं और यदि कुछ कानूनी साक्ष्य हैं जिन पर उनके निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं, तो उस साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता एक ऐसा मामला नहीं है जिसे संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट के लिए कार्यवाही में उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने की अनुमति दी जा सकती है।

15. ए.पी. राज्य बनाम चित्रा वेंकट राव [(1975) 2 एस.सी.सी. 557: 1975 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 349: ए.आई.आर. 1975 एस.सी. 2151] में, सिद्धांतों पर पैरा 21-24 में आगे चर्चा की गई है, जो इस प्रकार है: (एस.सी.सी. पृ. 561-63)

21. विभागीय पूछताछ से निपटने में अनुच्छेद 226 का दायरा इस न्यायालय के समक्ष आया है। इस न्यायालय द्वारा ए.पी. राज्य बनाम एस. श्री राम राव [एआईआर 1963 एससी 1723] में दो प्रस्ताव रखे गए थे। पहला, यह विचार कि किसी लोक सेवक के खिलाफ आरोपित कदाचार के लिए उसे दोषी मानने में, आपराधिक परीक्षाओं में अनुसरण

किए जाने वाले नियम कि जब तक साक्ष्यों द्वारा उचित संदेह से परे अदालत की संतुष्टि के लिए साबित न हो, तब तक अपराध स्थापित नहीं होता, को लागू करना आवश्यक है, का कोई आधार नहीं है। यदि उस नियम को जांच के घरेलू न्यायाधिकरण द्वारा लागू नहीं किया जाता है, तो उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका में विभागीय जांच करने वाले अधिकारियों के आदेश को अमान्य घोषित करने में सक्षम नहीं है। उच्च न्यायालय एक लोक सेवक के खिलाफ विभागीय जांच करने वाले अधिकारियों के फैसले पर अनुच्छेद 226 के तहत अपील की अदालत नहीं है। न्यायालय का उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि क्या जांच उस संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा की गई है और उस संबंध में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की गई है, और क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन नहीं किया गया है। दूसरा, जहां कुछ साक्ष्य हैं जिन्हें जांच करने का कर्तव्य सौंपे गए प्राधिकारी ने स्वीकार कर लिया है और जो साक्ष्य इस निष्कर्ष का उचित रूप से समर्थन करते हैं कि दोषी अधिकारी आरोप का दोषी है, उच्च न्यायालय का कार्य साक्ष्य की समीक्षा करना और साक्ष्य पर स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचना नहीं है। उच्च न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है जहां विभागीय अधिकारियों ने प्राकृतिक न्याय के नियमों के साथ असंगत तरीके से या जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों का उल्लंघन करते हुए अपराधी के खिलाफ कार्यवाही की है या जहां अधिकारियों ने साक्ष्य और मामले की के गुण-दोष से परे कुछ विचारों से निष्पक्ष निर्णय तक पहुंचने में स्वयं को अक्षम कर दिया है या स्वयं को अप्रासंगिक विचारों से

प्रभावित होने की अनुमति दी है या जहां निष्कर्ष स्पष्ट रूप से इतना पूरी तरह से मनमाना और कपटी है कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी उस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता था। विभागीय अधिकारी, यदि जांच अन्यथा ठीक से आयोजित की जाती है, तो तथ्यों के एकमात्र न्यायाधीश होते हैं और यदि कुछ कानूनी साक्ष्य हैं जिन पर उनके निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं, तो उस साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता एक ऐसा मामला नहीं है जिसे अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट के लिए कार्यवाही में उच्च न्यायालय के समक्ष प्रचार करने की अनुमति दी जा सकती है।

22. पुनः, इस न्यायालय ने *रेलवे बोर्ड बनाम निरंजन सिंह* [(1969) 1 एससीसी 502: (1969) 3 एससीआर 548] में कहा कि उच्च न्यायालय अनुशासनात्मक प्राधिकरण के निष्कर्ष में तब तक हस्तक्षेप नहीं करता जब तक कि निष्कर्ष किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है या यह कहा जा सकता है कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति इस तरह के निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता था। *निरंजन सिंह मामले* में [(1969) 1 एस. सी. सी. 502:(1969) 3 एस. सी. आर. 548] इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय ने इस आरोप पर अनुशासनात्मक प्राधिकरण के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने में अपनी शक्तियों का उल्लंघन किया कि प्रतिवादी ने 31-5-1956 को सुबह लगभग 8.15 बजे एयर कंप्रेसर को बंद करने के लिए बाध्य करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस न्यायालय ने कहा कि जांच समिति का मानना था कि दो व्यक्तियों की गवाही, जिन्होंने दावा किया था कि प्रतिवादी ने हड़ताली समूह का नेतृत्व किया और

उन्हें अपने कंप्रेसर को बंद करने के लिए मजबूर किया को बिना साक्ष्य के स्वीकार नहीं किया जा सकता। महाप्रबंधक उस मुद्दे पर जांच समिति से सहमत नहीं थे। महाप्रबंधक ने साक्ष्य स्वीकार कर लिया। इस न्यायालय ने कहा कि महाप्रबंधक के लिए ऐसा करना खुला है और वह समिति द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से बाध्य नहीं है। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पहुँचा गया निष्कर्ष प्रबल होना चाहिए और उच्च न्यायालय को निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

23. अनुच्छेद 226 के तहत उत्प्रेषण का अधिकार क्षेत्र एक पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र है। न्यायालय इसे अपीलीय न्यायालय के रूप में प्रयोग नहीं करता है। साक्ष्य के मूल्यांकन के परिणामस्वरूप एक निचली अदालत या न्यायाधिकरण द्वारा प्राप्त तथ्य के निष्कर्षों को रिट कार्यवाही में फिर से नहीं खोला जाता है या उन पर सवाल नहीं उठाया जाता है। कानून की एक त्रुटियां जो रिकॉर्ड के सामने स्पष्ट है, उसे एक रिट द्वारा ठीक किया जा सकता है, लेकिन तथ्य की त्रुटियां नहीं, चाहे वह कितनी भी गंभीर प्रतीत हो। न्यायाधिकरण द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्ष के संबंध में, एक रिट जारी की जा सकती है यदि यह दिखाया जाता है कि उक्त निष्कर्ष को अभिलिखित करते हुए, न्यायाधिकरण ने गलती से स्वीकार्य और महत्वपूर्ण साक्ष्य को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था, या गलती से अस्वीकार्य साक्ष्य को स्वीकार किया था जिसने विवादित निष्कर्ष को प्रभावित किया है। पुनः यदि तथ्य का निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, तो उसे कानून की त्रुटियां माना जाएगा जिसे उत्प्रेषण रिट द्वारा ठीक किया जा

सकता है। न्यायाधिकरण द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्ष को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि न्यायाधिकरण के समक्ष प्रस्तुत प्रासंगिक और महत्वपूर्ण साक्ष्य एक निष्कर्ष को बनाए रखने के लिए अपर्याप्त या असंतोषजनक है। किसी बिंदु पर प्रस्तुत साक्ष्य की पर्याप्तता और उक्त निष्कर्ष से निकाले जाने वाले तथ्य का निष्कर्ष न्यायाधिकरण के अनन्य अधिकार क्षेत्र में है। (*सैयद याकूब बनाम के.एस. राधाकृष्णन* [एआईआर 1964 एससी 477] देखें।)

24. वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने पूरे साक्ष्य का मूल्यांकन किया और अपने निष्कर्ष पर पहुंचा। उच्च न्यायालय का ऐसा करना उचित नहीं था। इस पहलू के अलावा कि उच्च न्यायालय इस आधार पर तथ्य के निष्कर्ष को सही नहीं करता है कि साक्ष्य पर्याप्त या संतोषजनक नहीं है, वर्तमान मामले में साक्ष्य जिस पर न्यायाधिकरण द्वारा विचार किया गया था, उच्च न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष को सही ठहराने के लिए स्कैन नहीं किया जा सकता है कि ऐसा कोई सबूत नहीं है जो न्यायाधिकरण के निष्कर्ष को सही ठहराए कि प्रतिवादी ने यात्रा नहीं की। न्यायाधिकरण ने अपने निष्कर्षों के कारण बताए। उच्च न्यायालय के लिए यह कहना संभव नहीं है कि कोई भी उचित व्यक्ति इन निष्कर्षों पर नहीं पहुंच सकता था। उच्च न्यायालय ने साक्ष्य की समीक्षा की, साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किया और फिर साक्ष्य को बिना सबूत के खारिज कर दिया। यह ठीक वही है जो उच्च न्यायालय को उत्प्रेषण जारी करने के लिए अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय नहीं करना चाहिए।

16. इन सिद्धांतों को जीवित किंवदंती और शताब्दी पुरुष वी.आर. कृष्ण अय्यर, जे. द्वारा हरियाणा राज्य बनाम रतन सिंह [(1977) 2 एससीसी 491: 1977 एससीसी (एल एंड एस) 298] में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। असमानांतर और अद्वितीय अभिव्यक्तियों को उद्धृत करने के लिए: (एससीसी पृष्ठ 493, पैरा 4)

.4. ... घरेलू जांच में भारतीय साक्ष्य अधिनियम के तहत साक्ष्य के सख्त और परिष्कृत नियम लागू नहीं हो सकते हैं। सभी सामग्री जो एक विवेकपूर्ण मन के लिए तार्किक रूप से संभावित हैं, स्वीकार्य हैं। सुनी-सुनाई बातों से कोई एलर्जी नहीं है बशर्ते कि इसमें उचित संबंध और विश्वसनीयता हो। यह सच है कि विभागीय अधिकारियों और प्रशासनिक न्यायाधिकरणों को ऐसी सामग्री का मूल्यांकन करने में सावधानी बरतनी चाहिए और उन्हें भारतीय साक्ष्य अधिनियम के तहत कड़ाई से प्रासंगिक नहीं मानी जाने वाली बातों को सतही रूप से स्वीकार नहीं करना चाहिए। इस प्रस्ताव के लिए न तो निर्णयों का हवाला देना जरूरी है और न ही पाठ्य पुस्तकों का, हालांकि हमें दोनों पक्षों के वकीलों द्वारा केस लॉ और अन्य अधिकारों के माध्यम से बताया गया है। न्यायिक दृष्टिकोण का सार वस्तुनिष्ठता, बाहरी सामग्री या विचारों का बहिष्कार और प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन है। बेशक, निष्पक्षता आधार है और यदि विकृति या मनमानेपन, पूर्वाग्रह या निर्णय की स्वतंत्रता का समर्पण निष्कर्ष पर पहुंचने को दूषित करता है, तो इस तरह के निष्कर्ष, भले ही घरेलू न्यायाधिकरण के हों, को अच्छा नहीं माना जा सकता है।

12. एस.सी. गिरोत्रा बनाम यूनाइटेड कमर्शियल बैंक (यूको बैंक) एवं अन्य के मामले में, जिसकी रिपोर्ट 1995 अनुपूरक (3) एससीसी 212 में दी गई, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ-3 और 5 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

“3. निस्संदेह, अनुशासनिक प्राधिकारी ने बर्खास्तगी का आदेश देते समय निम्नानुसार कहा:

“प्रस्तुतकर्ता अधिकारी ने 28 प्रदर्श प्रस्तुत की हैं, जिनमें से अधिकांश श्री राजिंदर पॉल और बी. बी. भाटिया, अधिकारी और शाखा के तत्कालीन सहायक प्रबंधक के प्रमाण पत्र के रूप में हैं, जबकि एक दस्तावेज (पी. ई. एक्स.-26) श्री वी. पी. जिंदल और श्री जे. आर. की निरीक्षण/जांच रिपोर्ट के रूप में है। प्रमाण पत्र और निरीक्षण-सह-जांच रिपोर्ट सबसे व्यापक दस्तावेज हैं। पंजाब डिवीजन, चंडीगढ़ के तत्कालीन डिवीजन कार्यालय के दो वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा लगभग दो महीने के कठिन प्रयासों के बाद निरीक्षण-सह-जांच रिपोर्ट तैयार की गई है। शाखा के दो अधिकारियों के विभिन्न प्रमाण पत्रों द्वारा इसकी पुष्टि की गई है।

चारों अधिकारी जांच अधिकारी के सामने पेश हुए और दस्तावेजों के उनके लेखन की गवाही दी। उनके प्रमाण पत्र/निरीक्षण-सह-जांच रिपोर्ट में आरोप पत्र में लगाए गए सभी आरोपों/आरोपों को व्यापक रूप से शामिल किया गया है। उन्हें अन्य दस्तावेजों द्वारा भी समर्थित किया गया है।

उपरोक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि जिस रिपोर्ट पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा भरोसा किया गया था, वह एक व्यापक दस्तावेज था जिसमें बैंक की पुस्तकों और अभिलेखों के साथ-साथ बैंक के अधिकारियों द्वारा जारी किए गए कुछ प्रमाणपत्रों सहित सामग्री के आधार पर अपीलार्थी के खिलाफ निष्कर्ष निकाला गया था, साथ ही बैंक के अधिकारियों द्वारा जारी कुछ प्रमाण पत्र भी थे जो अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों के समर्थन में साक्ष्य थे। भी स्पष्ट है कि अपीलार्थी को उस रिपोर्ट के निर्माताओं, श्री वी. पी. जिंदल और श्री जे. आर. शर्मा या ऐसे प्रमाण पत्र देने वाले अधिकारियों से जिरह करने का कोई अवसर नहीं दिया गया था जो आरोपों को साबित करने के लिए सबूत थे जिसके कारण अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया था , यह भले ही उन व्यक्तियों से संबंधित दस्तावेजों को साबित करने के उद्देश्य से उनकी जांच की गई थी। हमारी राय में, अपीलार्थी द्वारा की गई शिकायत कि इन गवाहों से जिरह करने की अनुमति से इनकार करना अपीलार्थी को बचाव के उचित अवसर से वंचित करना था, उचित है।

रेखांकित आपूर्ति की गई।

5. पहले दर्शाई गई जाँच में कमजोरी को देखते हुए, यह उचित है कि जाँच कार्यवाही को जाँच रिपोर्ट के चरण से अलग कर दिया जाए और प्रत्यर्थी-बैंक को उस चरण से नए सिरे से जाँच करने का निर्देश दिया जाए जिससे अपीलार्थी को अपना बचाव करने का उचित अवसर मिले। इस उद्देश्य के लिए अपीलार्थी को वी. पी. जिंदल, जे. आर. शर्मा, राजिंदर पॉल और बी. बी. भाटिया से जिरह करने का अवसर दिया जाना चाहिए, जिनसे प्रबंधन ने आरोपों के समर्थन में जिरह की थी। जाँच अधिकारी को तब जाँच को समाप्त कर पूरी सामग्री के आधार पर रिपोर्ट बनानी चाहिए। जांच

अधिकारी द्वारा दिए गए निष्कर्ष के आधार पर कानून के अनुसार आगे की कार्रवाई की जानी चाहिए। मामले की परिस्थितियों में, हम यह भी निर्देश देते हैं कि अपीलार्थी आज से निलंबन में रहेगा और उसके साथ इस संबंध में लागू नियमों और विनियमों के अनुसार व्यवहार किया जाएगा। अपीलार्थी को आज से शुरू होने वाले उसके निलंबन की अवधि के दौरान नियमों के अनुसार वर्तमान दरों पर निर्वाह भत्ता दिया जाएगा। अपीलकर्ता इस संबंध में आगे के निर्देश लेने के लिए प्रत्यर्थी-बैंक के चंडीगढ़ क्षेत्र के क्षेत्रीय प्रबंधक को 1-3-1994 को रिपोर्ट करेगा और वह अधिकारियों के साथ पूरा सहयोग करेगा ताकि जांच को जल्द से जल्द और अधिमानतः मई 1994 के अंत तक पूरा किया जा सके।

13. इन तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में, याचिकाकर्ता ने एक मामला बनाया है ताकि विवादित आदेशों में हस्तक्षेप किया जा सके। तदनुसार, अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा पारित दिनांक 14.11.2009 और अपीलीय प्राधिकरण द्वारा पारित दिनांक 19.02.2010 के विवादित आदेशों को रद्द किया जाता है।

14. वर्तमान रिट याचिका की अनुमति है।

15. संबंधित उत्तरवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को सेवा से हटाए जाने की तिथि से लेकर सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने और सेवा से सेवानिवृत्त होने तक की अवधि के दौरान 50% मौद्रिक लाभ और अन्य सेवानिवृत्ति सेवा लाभ जैसे मौद्रिक लाभ प्रदान करें। उपरोक्त अभ्यास इस आदेश की प्राप्ति की तिथि से छह महीने की अवधि के भीतर पूरा किया जाएगा।

(पी. बी. भजंत्री, न्यायमूर्ति)

पी. एस./

-खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।